ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-1 * ISSUE-10*JUNE-2014

शास्त्रीय संगीत के उत्थान में सहायक संगीत का आध्यात्मिक पक्ष

सोनिया बिन्द्रा
एसो0 प्रो0 एवं प्रभारी
संगीत विभाग
एन0 के0 बी0 एम0 जी0 पी0जी0 कॉलेज चन्दौसी
सम्भल

सारांश

संगीत प्राचीन काल से ही धर्म से जुड़ा था और कालान्तर में अपने आध्यात्मिक स्वरूप की चरम सीमा पर विकसित हुआ। जहाँ धार्मिक अभिव्यक्ति उसका मूल रही, वहीं आध्यात्मिकता उसका सम्भल व पुष्ठ नीव है। संगीत धर्म से उत्पन्न मन्दिरों में पला बढ़ा समाज में मुखर हुआ है। मन्दिरों का संगीत सदैव ही शुद्धता लिए हुआ था जो शास्त्रीय शैली के अन्तर्गत गाया बजाया गया।

जिसके अन्तर्गत स्त्रोत गान प्रबन्ध गान तथा रागबद्ध भजन, कीर्तन आदि गाये बजाये जाते हैं जो शास्त्रीय नियमो से आबद्ध होकर जब गाये बजाये जाते हैं तो रस की अविवेचनीय धारा का स्रोत फूट जाता है जो सभी को पूर्ण रूप से भिगो देता है और समस्त प्राणी जगत भक्ति में लीन हो आत्म विभोर हो उठता है। धार्मिक संगीत समस्त जगत की आत्मा का प्रतिविम्ब है जो शुद्ध विचारो, शुद्ध आचारण, शुद्ध क्रिया–कलापों को दर्शाता है। भक्ति तत्व को आत्मसात कर विद्वानों, गायको, वादको ने अपने पूर्ण कौशल को अपने परम भू को समर्पित कर दिया था उस पर भू के सानिध्य में अपने आप को पूर्ण सुरक्षित व आत्मोत्थान के प्रति सहज मानते थे इन सभी की गायकी परम भू को समर्पित होती थी। इन्ही सभी भक्त, गायकों के कारण धार्मिक संगीत निरन्तर पुष्ठ व उन्नतिशील होता रहा और उसमें नित नवीन सोपान जुड़ते चले गये।

मुख्य शब्द : चक्षुओं, लालित्य, आध्यात्मिकता, अभिव्यंजना, अन्तर्निहित,

प्रस्तावना

शास्त्रीय संगीत व आध्यात्मिक संगीत

हृदयस्थ भावों की नादमयी ललित अभिव्यक्ति ही संगीत है। संगीत में अन्तर्निहित एक ऐसा कौशलपूर्ण लालित्य है, जो दृष्टा एवं श्रोता के हृदय को आकृष्ट करता है, तथा उसके चक्षुओं के दर्शन की प्यास बुझाता है। उसके अन्तः करण की भूख को शान्त करता है, उसकी श्रवणेन्द्रियों को सुनने की लालसा को तृप्त करता है, और उसकी मानसिक सन्तुष्टि का कारण होता है। संगीत एक ऐसी विद्या है जिसमें प्रतिभा, व संस्कार के साथ–साथ बहुत तप, त्याग और परिश्रम की आवश्यकता होती है। इससे आत्मतुष्टि के साथ–साथ पारलौकिक संतुष्टि भी प्राप्त होती है। संगीत का आधार नाद है। नाद अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक है। वह इतना सूक्ष्म है, कि प्रकृति के कण–कण में उसकी सत्ता पायी जाती है। इसीलिए संगीत भी अत्यन्त सूक्ष्म और प्रभावोत्पादक हैं। संगीतज्ञ के अन्तः करण में संगीत का रूप सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है, और जब वह कंठ या वाद्य के द्वारा उसे व्यक्त करता है तो वह स्थूल हो जाता है। इसी सूक्ष्मता और स्थूलता के कारण संगीत का प्रभाव जड़ और चेतना दोनों पर पड़ता है। संगीत में यही नाद ब्रह्म का द्योतक माना गया है। धार्मिक अभिव्यंजना इसी संगीत रूपी नाद से सम्भव है। शास्त्रीय संगीत और आध्यात्मिकता से नाद अटूट रूप से जुड़ा है। भले ही संगीत का उद्गम मानव की सहज भावनाओं अदम्य प्रेरणाओं का अभ्यंतर हुआ हो, परन्तु उसका विकास तथा लालन पालन धर्म के आश्रय में हुआ है। धार्मिक अभिव्यंजना भारतीय ललित कलाओं की आधार भूमि रही है। लौकिक परम्परा में उद्भूत होने पर धार्मिक परम्पराओं पर उसकी प्राण प्रतिष्ठा होती रही है। जिसका उदाहरण है– प्राचीन काल से ही संगीत दो धाराओं में प्रवाहित था–एक वह जिसका प्रयोग धार्मिक समारोहों पर धार्मिक विधि विधान के अन्तर्गत किया जाता था, और दूसरा वह जिसका प्रयोग लौकिक समारोहों पर किया जाता था, और जिसका उद्देश्य केवल लोगों का मनोरंजन करना था। वैदिक या ग्राम संगीत का समावेश पहली धारा में होता है और अवैदिक या लौकिक संगीत का समावेश दूसरी धारा में होता है।

वैदिक काल में ये दोनो धाराएं समानान्तर रूप से चलती रही, और समय–समय पर एक दूसरे को प्रभावित भी करती रही। प्रथम धारा 'मार्गी' शाखा कहलाई, तथा दूसरी देशी धारा कहलाई। दोनो का मूलाधार या स्रोत जन संगीत या लोक संगीत था। केवल अन्तर यह है कि प्रथम को संस्कार और परिष्कार प्राप्त होने के कारण उच्च श्रेणी या शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त हुआ और दूसरा लोक रूचि अनुकूल विकसित होने के कारण सामान्य जनता में लोकप्रिय हुआ। मार्ग संगीत शास्त्रीय संगीत के नियमों से बद्ध रहा, दूसरा लोक संगीत के नियमों से नियन्त्रित रहा। प्रथम में अनुशासन नियमों का था, दूसरे में अनुशासन लोकरूचि का था। आज की गायन शैलियों में संगीत में अन्तर्निहित भक्ति या आध्यात्मिकता को सहज ही अनुभूत किया जा सकता है। भक्ति की यह परम्परा विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से प्रचलित है। सामवेद ऋग्वेद का ही रूपान्तर है। सामवेद गायन की दृष्टि से जरूर भिन्न है, परन्तु साहित्य की दृष्टि से सर्वथा अभिन्न है। सामवेद के सभी मन्त्र ऋग्वेद से गृहित है। केवल अन्तर है, जहाँ ऋग्वेद का पाठ आधुनिक काव्यपाठ या कविता गायन के समान रहा, वहाँ सामवेद का गायन आलापों से युक्त शास्त्रीय संगीत के समान रहा। सामवेद का संगीत भारत के इतिहास में प्रथम भक्ति संगीत होने का अधिकारी है। यह वह संगीत है, जिसमें भक्तों ने अपनी आराध्य विषयक भावनाओं को स्वरों में बाँधा है। इन गीतों की सरसता का मूल आत्मीयता तथा आत्म निवेदन में है। ऐहिक समृद्धि तथा परलौकिक वैभव पाने की इच्छा से जिन ऋचाओं का निर्माण हुआ, उन्हीं को तत्कालीन संगीतकारों ने स्वर प्रदान किया।

संगीत प्राचीन काल से ही धर्म से जुड़ा था, और मध्यकाल में अपने आध्यात्मिक स्वरूप की चरम सीमा पर विकसित हो रहा था। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम तथा समर्पण की भावना को ही भक्ति या आध्यात्मिकता कहते है। ये भक्ति कुछ लोग जप–तप करके प्रदर्शित करते है, तो कुछ उपासना के माध्यम से, और कुछ गेय रूप में संगीत में भजन कीर्तन करके अपने इष्ट को रिझाते है। बल्लभ, चैतन्य, सूरदास, मीरा, तुलसी, पुरन्दरदास, त्यागराज, तुकाराम, नरसी, गोरख, हरिदास, जयदेव, विद्यापति, धर्मदास, रैदास, पलटूदास, दादू, सुन्दरदास, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, इत्यादि सन्त भक्तों ने स्वर और शब्द की चेतन शक्ति से ही भगवान् का अनन्य प्रेम उपलब्ध किया, तथा जगत को सत्य का सन्देश भी दिया। आलवार सन्तों ने रस सिक्त करके उत्तर को भी उससे आप्लावित किया । इन सन्तों की परम्परा में ही रामानुजाचार्य जी की परम्परा को पोषित करने वाले स्वामी रामानन्द हुए, जिन्होंने भक्ति संगीत के क्षेत्र में भेद की दीवारो को समाप्त करके, समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उसे स्वयं बना दिया। मध्यकाल में आध्यात्मिकता अपने चरम उत्कर्ष पर थी, और इसी समय निर्गुण सन्त भक्ति, प्रेममार्गी सूफी भक्ति, प्रेमलक्षण कृष्ण भक्ति तथा मर्यादा मार्गी राम भक्ति की प्रेरणा से संगीत पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त कर चुका था। इस काल के भक्त गायकों द्वारा प्रसारित जीवन के मूल्य और मर्यादाएँ आज तक लोक में प्रतिष्ठित है, क्योंकि सभी सन्त गायक समान रूप से सांसारिक भोग विलास को हेय और त्याज्य दृष्टि से देखते थे।

शास्त्रीय संगीत में अन्तर्निहित भक्ति तत्व

भक्ति परक काव्य को ही भजन कहा जाता है। छन्द और स्वर की दृष्टि से भक्ति गीत के लिए कोई बन्धन नहीं है। फिर भी गेय पद स्वर, राग एवं ताल से विभूषित होकर जब प्रस्तुत किये जाते है तो उनसे रस की जो अजस्र धारा बहती है, वह अनिर्वचनीय होती है। भक्ति संगीत के पद में इष्ट के रूप और गुण का कीर्तन होता है। भक्ति गीत को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरूषार्थो का साधन बताया गया है। भक्ति गीत प्रेम के द्वारा श्रेय की उपलब्धि कराने में अद्वितीय है। भक्तिपरक पद या विष्णुपद शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद पद्धति के जनक है। इससे पूर्व स्त्रोभ या स्त्रोत गान (ईश्वरपरक स्तुति गान) ने प्रबन्ध गान को पुष्ट किया था। इन सबका आदि रूप सामगान वस्तुतः स्त्रोत पाठ का ही गेय रूप था। जहाँ भक्त ईश्वर के स्वरूप का ध्यान न करते हुए, केवल उसकी सत्ता का चिन्तन करता है। वह निर्गुण या निराकार उपासना कहलाती है, और जहाँ भक्त ईश्वर को सजीव या साकार रूप से उपासना करते है वह सगुण के नाम से अभिहित है। शास्त्रीय कलाकारों की कृतियाँ कालान्तार में लुप्त हो गई किन्तु भक्त कवियों के भजन पद और कीर्तन परम्परागत कंठो में अक्षुण्ण रहे। हिन्दी भक्ति साहित्य ही क्या? समस्त भारतीय साहित्य में भक्ति ने काव्य को संगीत के साथ ही स्वीकार किया है। गेयता के कारण ही संगीतमय भक्ति काव्यकाल के बीच प्रभावपुंज स्थिति में बना रहा।

शास्त्रीय संगीत में आध्यात्मिकता का अविरल प्रवाह

काव्य या संगीत की परिणति है, रस संचार। काव्य में रस की निष्पत्ति शब्द, अर्थ और भाव युक्त छन्दों से होती है, और संगीत में रस का संचरण सप्त स्वर, एवम् अंग संचालन एवं विविध तालों के माध्यमों से होता है। हिन्दी भक्ति धारा में संगीत साधना का अंग था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने पुष्टि भक्ति एवं नवधा भक्ति में कीर्तन का समावेश किया था। पुष्टिमार्गीय सेवा विधि में अष्ट प्रहार की झाँकी के अनुकूल ही संकीर्तन, एवं पदों का गायन होता था। अष्ट छाप के कवि सूरदास, कुम्भनदास, नन्ददास, परमानन्द, छीतस्वामी, चतर्भुज दास, गोविन्द दास एवं कृष्णदास कवि ही नहीं थे वरन् महान संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार थे। स्वामी हरिदास एवं गोविन्द स्वामी के शिष्यत्व में गायक तानसेन ने गान विद्या सीखी थी। महाकवि सूरदास ने ''मना रे करि माधौ से प्रीत।'' गाकर सम्राट अकबर को आश्चर्य चकित किया था। राजा बल्लभ सम्प्रदाय के श्री हरि व्यास ने राग माला पर एक शास्त्रीय ग्रन्थ रचा था। मीरा, राजा आसकरण, गंग, ग्वाल आदि भक्त कवि भी संगीत के ज्ञाता थे। सूर मल्हार, सूर सारंग, मीराबाई की मल्हार, सूर और मीरा के नाम से प्रचलित राग, आज भी गाये जाते है। अष्ट प्रहर की नित्य सेवा तथा सर्वोत्सव की सेवाओं के लिए बाल लीला से लेकर राज लीला तक के कृष्ण चरित की समयानुकूल राग रागिनियों में बद्ध पदों को भक्तगण गाते थे। इस सभी सन्त कवियों सूर, कबीर, मीरा, मलूक आदि के पद के लिए राग रागिनियों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। गौड़ी बिलाबल, सौरठ, बसन्त, सारंग, धनश्री, मारू, भैरव, तौड़ी, आसावरी, रामकली,

मल्हार, शुद्ध कल्याण, रामकली, केदार, कान्हड़ा नट, नटनाराण, आदि प्रमुख शास्त्रीय रागों का उल्लेख पदों के साथ मिलता है। कृष्ण भक्त कवियों ने संगीत के शास्त्रीय स्वरूप का भी चित्रण किया है। संगीत के भेद, प्रभेद, अंग, उपांगों के साथ ही, नाद, 22 श्रुति, ग्राम, 19 मूर्च्छना, 49 कूटतान, सप्त स्वरों के नाम (षडज, रे, ग, म, पा, धा, नि, सा) सप्तक, सरगम, ओडव, षाडवे, सम्पूर्ण आरोही अवरोही आदि संगीत की शास्त्रीय शब्दावली का उललेख किया है। गायन के प्रकार में ध्रुपद और धमार का उल्लेख भी पदों में मिलता है। सूरदास ने ''छहो राग छत्तीसो रागिनि इक, इक नीके गावेरी'' कह कर अपना संगीत ज्ञान दर्शाया है। इसी श्रृंखला में मीराजी के राग जोगिया–

''हेरी मै तो प्रेम दिवानी, मैरो दरद न जाणें कोय।''

अन्य मीरा साहित्य में अधोलिखित राग रागनियों का उल्लेख हुआ है।– तिलंग, ललित, हमीर, कान्हरा, त्रिवेनी, गूजरी, नीलाबरी, कामोद, मुलतानी, मालकौस, झिझोंटी, सौरठ पट मंजरी, गुन बिलाबल, प्रभाती, श्यामकल्याण, मल्हार, रामकली, जोगिया, होली, सारंग, आनन्द भैरव बागेश्वरी एवं भावती, देरूआसावरी, तोड़ी इत्यादि का प्रयोग मिलता है।

इन सभी भक्त गायको, गायिकाओं के ये पद शास्त्रीय संगीत की समृद्धि को अपार समृद्ध कर विस्तृत विवेचना को प्रस्तुत करते है, जो ताल बद्ध, स्वर बद्ध होकर भक्ति संगीत की अविरल प्रवाह में और तीव्रतम वृद्धि कर रहे है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है कि आध्यात्म तथा शास्त्रीय संगीत का गठबंधन भारतीय परम्परा में दृढ़मूल रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत शान्त मस्तिष्क के लिये केवल मनोविनोद का साधन नही, वरन् ईश्वर के अनुसंधान से परम मंगल का विधायक है। नारद, तुम्बरू से लेकर मध्यकालीन भक्त कवियों तक संगीत ही आराधना का माध्यम रहा है देवालयों में पूजा परिपाटी के अन्तर्गत गीत तथा नृत्य का प्रचलन प्राचीन काल से आधुनिक काल तक बराबर प्रचलित है। चाहे वह भक्तों के संकीर्तन के रूप में हो अथवा देवदासियों के रूप में हो। प्राचीन स्थापत्य तथा चित्र कला में नृत्य संगीत के आयोजन बहुशः उत्कीर्ण पाये जाते हैं, जो संगीत के अधिभौतिक महत्व के द्योतक माने जा सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. साहित्य निबन्ध– डॉ0 द्वारिकाप्रसाद
2. संगीत बोध– शरच्चन्द्र पराँजपें
3. संगीत निबन्ध संग्रह – हरिचन्द्र श्रीवास्तव
4. भारतीय संगीत ऐतिहासिक विश्लेषण – डॉ0 स्वतन्त्र शर्मा
5. हरिशचन्द्र श्रीवास्तव (1995), संगीत निबन्ध संग्रह संगीत सदन प्रकाशन, 134/88, साउथ मलाका इलाहाबाद।
6. डॉ स्वतन्त्र शर्मा (1988) प्रथम संस्करण, (1995) द्वितीय संस्करण, भारतीय संगीत एतिहासिक विश्लेषण, टी0एन0 भार्गव एण्ड संस, इलाहाबाद–2।
7. शरदचन्द्र पराँजपे (1972), संगीत बोध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
8. अमलदास शर्मा (1990), भक्ती संगीत, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ उषा गुप्ता (1959), हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य संगीत, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी (1970), मध्यकालीन धर्मसाधना, साहित्य भवन, इलाहाबाद।